(भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 की प्रासंगिकता)

डॉ. अबु सुफियान
एसो. प्रोफेसर (विधि)
शिब्ली नेशनल पी.जी. कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

भारत में विगत कुछ वर्षों में समलैंगिकों के द्वारा भारतीय संविधान की आड़ में मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार तथा मानव अधिकारों की संरक्षा हेतु आवाज उठाई जा रही है। इसे एक आंदोलन का रूप देकर समलैंगिक लोगों द्वारा संघर्ष एवं इन संघर्षों के इतिहास के दस्तावेजीकरण करने का तथा अन्य प्रगतिशील आंदोलनों के साथ जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। इसके साथ ही प्रकृति द्वारा प्रदत आदर्श संरचना के बाहर एक कृतिम समाज बनाने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है। इसी क्रम में कुछ अति उत्साहित संस्थाओं द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में समलैंगिकों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 377[1] को चुनौती प्रदान की गई थी।

नाज फाउंडेशन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2009[2] नामक वाद दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ए पी शाह व न्यायमूर्ति एस मुरलीधर ने भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 377 को संविधान के अनुच्छेद 14,15,19,21 के विरुद्ध घोषित करते हुए समलैंगिको के मूल अधिकारों के विपरीत बताया क्योंकि धारा 377 एकांत में वयस्कों के परस्पर सहमति से बनाए गए शारीरिक संबंधों को अपराध घोषित करती है तथा उन्हें एक पूर्ण व्यक्ति के अधिकार से वंचित करती है। जुलाई 2009 को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इस निर्णय ने समलैंगिकता पर एक राष्ट्रीय बहस छेड़ दी है। नाज फाउंडेशन के बैनर तले आवाज उठा रहे हैं लोग भले ही धारा 377 को अपने मानव एवं मूल अधिकार के विपरीत मान रहे हैं एवं उक्त निर्णय उन्हें अंधेरे में आशा की किरण प्रतीत हो रही है परंतु वास्तव में इस निर्णय की आलोचना अवश्य होनी चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मूल अधिकार क्या है ? संविधान की परंपरा प्रारंभ होने के पूर्व इन अधिकारों को प्राकृतिक अधिकार कहा जाता था। अमेरिका और फ्रांस में इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिदेय अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत में भी गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य[4] के मामले में न्यायाधीश सुब्बाराव ने इन अधिकारों को नैसर्गिक एवं अप्रतिदेय अधिकार माना है। संक्षेप में मूल अधिकार व प्रकृति प्रदत्त मानव अधिकार हैं जो मनुष्यों को इसलिए मिलने चाहिए क्योंकि वह जन्म से मनुष्य हैं तो प्रश्न यह है कि क्या प्रकृति ने एक ही लिंग के व्यक्तियों को आपस में

समागम करने का अधिकार प्रदान किया है ? निश्चित तौर पर इस प्रश्न का उत्तर नहीं होगा तो किस प्रकार आईपीसी की धारा 377 इन व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है?

विश्व के महान नाटककार व कुशल राजनीतिज्ञ मानवतावादी व्यक्तित्व जार्ज बर्नार्ड शा ने भारतीय संस्कृति के बारे में लिखते है कि 'भारतीय जीवनशैली प्राकृतिक और असली जीवनशैली की दृष्टि देती है। हम खुद को अप्राकृतिक मास्क से ढंक कर रखते हैं। भारत के चेहरे पर मौजूद हल्के निशान रचयिता के हाथों के निशान हैं।'अब इन शब्दों में ही भारतीय का मूल छुपा है। राजनीति के चलते न्याय व्यवस्था से मंदिर से संस्कृति पर हो रहे हमले ने चिंता की लकीरें खींचना भी आरंभ कर दी है जो जनमानस के लिए भी परेशानी बनती जा रही है। जनमानस के मस्तिष्क में संस्कार शालाओं के प्रति उदासीनता भी दिखा रही है क्योंकि जिन चीजों को हमारे संस्कार वर्जित या त्याज्य मानते थे आज वो न्यायिक दृष्टि से सही कैसे माने जाने लगे है?

साल 1290 में सबसे पहले इंग्लैंड के फ्लेटा इलाके में अप्राकृतिक यौन संबंध बनाने का मामला सामने आया था, जिसे कानून बनाकर अपराध की श्रेणी में रखा गया। यह इस तरह का पहला मामला था। इसके बाद ब्रिटेन और इंग्लैंड में 1533 में अप्राकृतिक संबंधों को लेकर बगरी एक्ट बनाया गया। जिसके तहत फांसी का प्रावधान था। 1563 में क्वीन एलिजाबेथ–प्रथम ने इसे फिर से लागू कराया। 1817 में बगरी एक्ट से ओरल सेक्स को हटा दिया गया। ऑस्ट्रेलिया, माल्टा, जर्मनी, फिनलैंड, कोलंबिया, आयरलैंड, अमेरिका, ग्रीनलैंड, स्कॉटलैंड, लक्जमबर्ग, इंग्लैंड और वेल्स, ब्राजील, फ्रांस, न्यूजीलैंड, उरुग्वे, डेनमार्क, अर्जेंटीना, पुर्तगाल, आइसलैंड, स्वीडन, नॉर्वे, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, कनाडा, बेल्जियम, नीदरलैंड जैसे 26 देशों ने समलैंगिक यौन संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया है. इन देशों में इस तरह के यौन संबंध मान्य हैं.

भारत में 377 धारा

सन् 1860 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दंड संहिता में धारा 377 को शामिल किया और उसी वक्त इसे भारत में लागू कर दिया गया। 1861 में डेथ पेनाल्टी का प्रावधान भी हटा दिया गया। 1861 में जब लॉर्ड मेकाले ने इंडियन पीनल कोड यानी आई.पी.सी ड्राफ्ट किया तो उसमें इस अपराध के लिए धारा 377 का प्रावधान किया गया.

धारा 370 के बारे में इन उत्साहित संगठनों की कुछ अन्य चिंताएं निम्न है....

प्रथम यह की यौनिकता एवं लिंग की भिन्नता पर धारा 377 एकरूपता थोपना चाहती है। सामान्यतः यह उन अवधारणाओं को मान्यता देती है ताकि पितृसत्ता, विसमलैंगिकता से जुड़ी शादी एवं परिवार जैसी सामाजिक संस्थाएं और उनमें निहित गैर बराबरी बनी रहे?

यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि विवाह एवं परिवार जैसी संस्थाएं सृष्टि एवं समाज का आधार हैं तथा विश्व के सभी धर्मों, सभ्यताओं एवं विधियों में इन्हें स्थान प्रदान किया गया है। यह सृष्टि की निरंतरता बनाए रखने हेतु आवश्यक हैं। जहां तक पितृसत्ता का प्रश्न है, उनकी कमियों को विधियों के माध्यम से समाप्त करने का प्रयास जारी है।

इन उत्साही संगठनों की दूसरी चिंता यह है कि इस धारा की में बाल अधिकार हेतु संघर्ष कर रहे सामाजिक कार्यकर्ताओं को हताश किया है क्योंकि उन्हें इस बात का भय है कि इस धारा के रहते हुए अलग से कोई विशेष कानून नहीं बन पाएगा। इनकी यह आशंका भी उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि अनेक ऐसी समस्याएं थी जिनके लिए भारतीय दंड संहिता में प्रावधान थे परंतु फिर भी विधायिका ने समय–समय पर उपयुक्त कानून बनाकर इनके निवारण का प्रयास किया है। जैसे दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1978, घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005, इत्यादि। एक अन्य तर्क यह है कि यह प्रावधान उन वर्गों के स्वतंत्रता तथा जीवन जीने का मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है परंतु इस वर्ग के लोग यह भूल जाते हैं कि संविधान में प्रदत्त कोई अधिकार अत्यांन्तिक नहीं है तथा सभी अधिकारों पर कुछ न कुछ निर्बंधन अवश्य लगाए गए हैं।

सुरेश कौशल एवं अन्य बनाम नाज फाउंडेशन एवं अन्य[5] वाद में उच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि धारा 377 मौलिक अधिकारों का हनन नहीं करती। इसके पीछे न्यायालय ने यह तर्क लिया है कि मौलिक अधिकारों पर भी कुछ नियंत्रण लगाए जा सकते हैं। लेकिन यह नियंत्रण सिर्फ व्यापक राष्ट्रहित में ही लगाए जा सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस जी.एस. सिंघवी और ए.जे. मुखोपाध्याय की खंडपीठ ने कहा था कि इस मसले पर न्यायालय के हस्तक्षेप की जरूरत ही नहीं है। इस फैसले की वजह से फिर से 'अप्राकृतिक यौन संबंध' को अपराध की श्रेणी में ला दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इस बारे में दिल्ली हाईकोर्ट का निर्णय कानून सम्मत नहीं है। खंडपीठ ने कहा कि इस मामले में संसद को बहस कर कोई निर्णय लेना चाहिए।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय जनमानस का एक बड़ा वर्ग समलैंगिकता को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। इसके साथ यह भी स्वीकार करने योग्य नहीं है कि धारा 377 महिलाओं और बालकों के मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। हो सकता है कि भले ही यह धारा समलैंगिकों के संकीर्ण अधिकारों के

प्रतिकूल हो। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दायर याचिका के जवाब में भारत सरकार ने भी स्पष्ट किया है कि बाल और यौन उत्पीड़न पर अपराध करने वालों पर मुकदमा चलाने के लिए धारा 370 बेहद जरूरी है। अतः धारा 377 की प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है तथा इस धारा का बने रहना विधि एवं नैतिकता दोनों दृष्टि से आवश्यक है। समलैंगिकता का पुरजोर विरोध करने वाले बाबा रामदेव का कहना है कि समलैंगिकता सही होती तो भगवान ने एक ही लिंग की मानव जाति को संसार में भेजा होता।[6]

सन्दर्भ

1. 377 प्रकृति विरुद्ध अपराध –जो कोई किसी पुरुष, स्त्री या जीव–जंतु के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध स्वेच्छया इंद्रिय भोग करेगा, वह आजीवन कारावास से या दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि 10 वर्ष तक हो सकेगी दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।
2. याचिका संख्या (अपराधिक) 7455 वाद विनिश्चय तिथि 02.07.2009.
3. आई नेक्स्ट दैनिक समाचार पत्र, 30 सितंबर 2011 पृष्ठ संख्या 10
4. ए.आई.आर. 1967, एस.सी. 1643.
5. सिविलअपील संख्या 10972,(2013)
6. देखें इंडिया टुडे, 22.07.2009, पृष्ठ संख्या.51.